



वैदिक कालीन शिक्षा की विशेषताएँ तथा उद्देश्य

शोभना त्रिपाठी

एकेडमिक काउन्सलर

इग्नू, रायबरेली (उत्तर प्रदेश)

वेद शब्द का अर्थ ज्ञान होता है। वैदिक कालीन शिक्षा से तात्पर्य उस ज्ञान से है जो वेदों में सुरक्षित है तथा जो उस काल में प्रयोग किया जाता था। भारत की आधारभूत संस्कृति का ज्ञान इन्हीं प्राचीन धर्म-ग्रन्थों में सुरक्षित है। वैदिक कालीन शिक्षा न तो पुस्तकीय ज्ञान में विश्वास रखती थी और न ही जीवकोपार्जन का साधन थी, यह तो पूर्ण रूप से नैतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान का सोपान थी। उस समय की शिक्षा का अर्थ था कि व्यक्ति को इस प्रकार से आत्म प्रकाशित किया जाय कि उसका सर्वांगीण विकास हो सके। श्रवण मनन तथा निदिध्यासन आदि शिक्षा प्राप्त करने के साधन थे। वेद जो लिखित रूप से संकलित नहीं किये गये केवल कण्ठस्थ ही कराये जाते थे, श्रुति कहलाये। इस प्रकार वैदिक साहित्य में शिक्षा शब्द का प्रयोग विद्या ज्ञान तथा विनय आदि अर्थों में किया जाता था।

प्राचीन भारतीय मनीषियों द्वारा शिक्षा शब्द का प्रयोग व्यापक तथा सीमित दोनों अर्थों में किया गया है। डा. ए. एस. अल्तेकर के अनुसार व्यापक अर्थ में शिक्षा का तात्पर्य व्यक्ति को सभ्य व उन्नत बनाना है। इस दृष्टि से शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। सीमित अर्थ में शिक्षा का अभिप्राय उस औपचारिक शिक्षा से है जो व्यक्ति को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने से पूर्व छात्र रूप में गुरु से प्राप्त होती है। इस प्रकार वैदिक कालीन शिक्षा से तात्पर्य व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास है।

1. वैदिक कालीन शिक्षा महत्व

प्राचीन भारतीयों का विचार था कि शिक्षा वह प्रकाश है जिसके द्वारा व्यक्ति के सब संशयों का उन्मूलन तथा सब बाधाओं का निवारण हो जाता है। वह वास्तविक शक्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति की बुद्धि विवेक एवं कुशलता में वृद्धि होती है। शिक्षा ही जीवन यथार्थ के महत्व को समझने की क्षमता प्रदान करती है जिससे व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति होती है। वैदिक कालीन शिक्षाविदों ने शिक्षा के वास्तविक महत्व को स्वीकार किया तथा घोषणा की कि—

“विद्ययामृतमश्नुते।” अर्थात् विद्या से अमृतत्व, परमानन्द एवं मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। वैदिक कालीन ऋषियों का ध्यान लौकिक दिशा की ओर भी था इसलिए उन्होंने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से शिक्षा की व्यवस्था की थी—

“अन्धतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
त्तो भूयडव ते तमो येऽविद्यारता।”⁵

अर्थात् वे अन्धकार में प्रवेश करते हैं जो मात्र विद्या की उपासना करते हैं। और वे एकांगी होते हैं जो मात्र विद्या में रत रहते हैं। अतः भौतिक, आध्यात्मिक दोनों विद्याओं की उपासना की गई थी। डा. ए. एस. अल्तेकर ने इसके महत्व पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है —

“Education was regarded as a source of illumination and power which transforms and ennobles our nature by the progressive and harmonious development of our physical, mental, intellectual and spiritual powers and faculties”

2. वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था

वैदिक काल पूर्व वैदिक काल अथवा ऋग्वैदिक तथा उत्तरवैदिक (जो यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद, के अतिरिक्त ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् आदि की रचना काल था) के भेद से दो भागों में बंटा था भारतीय परम्परा के अनुसार ब्रह्मा द्वारा ऋषियों को मंत्रों का प्रकाश दिया गया। वे मंत्र उस ऋषि के पुत्रों एवं शिष्यों के माध्यम से कुल की परम्परा में सुरक्षित रहते थे। इस प्रकार प्रत्येक ऋषि कुल एक लघु विद्यालय के समान था जहाँ रहकर विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था।

“आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते”

आचार्य उपनयन संस्कार द्वारा ब्रह्माचारी को अपनी रक्षा में लेता था।

“आचार्यो उपनयमानो ब्रह्मचारिणं वृणुते गर्भन्तः”

गुरुकुलों में ऋषियों द्वारा पाठ को कण्ठस्थ कराया जाता था। प्रवचन तथा उच्चारण पर बल दिया जाता था तथा तप, आत्मदर्शन की युक्ति, प्रवचन तथा उच्चारण पर बल दिया जाता था। मानसिक चिन्तन तथा ध्यान से ज्ञान प्राप्त कराया जाता था। उत्तरवैदिक काल में सम्भवतः लेखन काल में भी उन्नति होने लगी थी। शिक्षण पद्धति में पाठों का उच्चारण, भाष्य व्याख्या तथा वाद-विवाद सम्मिलित थे। जो देश में वास्तविक ज्ञान का प्रचार करने वाले ‘चरक’ विद्वान थे वो देश में वास्तविक ज्ञान का प्रचार करते थे। शिक्षा के निमित्त पंचाल परिषद् नामक संस्थाएं थीं। इसके अतिरिक्त विद्वत्सभाओं का भी आयोजन हुआ करता था जैसे – राजा जनक की सभा जिसमें प्रमुख विद्वान याज्ञवल्क्य थे।

3. शिक्षकों की स्तर वैभिन्नता

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था विभिन्न श्रेणियों में गुरुओं का विभाजन करती थी। शिक्षकों के पर्याय के रूप में कुलपति, आचार्य, उपाध्याय, प्रवक्ता, पाठक, अध्यापक, श्रोत्रिय, गुरु, ऋत्विक्, चरक आदि का विभाजन उनकी योग्यतानुसार होता था। आधुनिक सन्दर्भ में आचार्य प्रोफेसर होता है, पाठक तथा प्रवाचक रीडर होते हैं, उपाध्याय लेक्चरर होते हैं, श्रोत्रिय प्रवक्ता होता है। इसी प्रकार विभिन्न विषयों के विभिन्न विशेषज्ञ होते थे। वैदिक समाज में आचार्य अथवा गुरु का स्थान अत्यन्त प्रतिष्ठित था। वह समाज को शिक्षित करने के साथ वैदिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान भी प्रदान करता था।

4. शिक्षार्थियों का ब्रह्मचर्य जीवन

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त पर आधारित थी। उपनयन संस्कार द्वारा आचार्य शिष्य को दूसरा जीवन देकर द्विज बनाता था। वह मृगचर्म तथा मेखला धारण करता था तथा लम्बे बाल रखता था। इस प्रकार छात्र सादा, सरल, संयमी जीवन व्यतीत करते थे। छात्र के लिए ब्रह्मचारी, अन्तर्वासी, शिष्य, माणवक आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता था। ब्रह्मचारियों के लिए भिक्षा, आचमन, प्राणायाम, मार्जन, गायत्रीपाठ, वेदाध्ययन, अभिवादन आदि कार्यों का विधान था। भिन्न-भिन्न शाखाओं के विशिष्टता प्राप्त शिक्षार्थियों के लिए अलग-अलग संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता था। जैसे – तित्तिरि आचार्य से प्रोक्त तैत्तिरीय शाखा के विद्यार्थी तित्तिरीय कहलाते थे। शिक्षार्थी का अध्ययन काल 12 वर्ष से लेकर 32 वर्ष था यह जीवनपर्यन्त भी हो सकता था।

5. वैदिक शिक्षा का विस्तार क्षेत्र

वैदिक शिक्षा का अपार भण्डार तत्कालीन साहित्य तथा उसकी शाखाओं एवं उपशाखाओं में बंटा था। ऋग्वेद के मन्त्रों का संकलन संहिता है। संहिताओं में सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद प्रमुख हैं जो ऋग्वेद के आधार पर ही विकसित की गई हैं। तत्पश्चात् ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों का विस्तार हुआ ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य साहित्य के सर्वप्राचीन ग्रन्थ हैं जिनमें एतरेय कौषीतकि तथा तैत्तिरीय प्रमुख हैं। उपनिषदों को ही वेदान्त कहा जाता है। स्वाध्याय के अन्तर्गत संहिताओं एवं इतिहास, पुराण कथाओं का अध्ययन किया जाता था। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार— चारों वेद, पांचवें वेद (व्याकरण) अंकगणित (देवलक्षण विद्या) निधि (उत्खनन विद्या), देवविद्या (निरुक्त), ब्रह्मविद्या (छन्द एवं ध्वनि विद्या), भूतविद्या (क्षत्र विद्या), धनुर्वेद (नक्षत्र विद्या, सर्व विद्या) देवजन विद्या (नृत्य, गायन), आदि की विधाएं नारद ने सीख ली थीं। इसी के समान सूची बृहदारण्यक उपनिषद् में भी पायी जाती है।

6. शिक्षण विधि

वैदिक कालीन शिक्षण विधि मौखिक एवं प्रश्नोत्तर प्रधान थी। इसे प्रत्यक्ष विधि के नाम से भी जाना जाता था। शिक्षा का स्वरूप पूर्णतः व्यक्तिगत हुआ करता था। विद्यार्थी अपने दैनिक जीवन में मन्त्रों का पाठ एवं उसकी व्याख्या करते थे साहित्य; काव्य तथा न्याय के क्षेत्र में निरन्तर वाद-विवाद खण्डन तथा मण्डन विद्यार्थियों द्वारा किया जाता था जिससे विद्यार्थियों की प्रत्युत्पन्न मतिवत्त्व व वक्तृत्व का विकास होता था। राजनीति तथा नैतिकता की शिक्षा कथाओं के माध्यम से दी जाती थी जिसके व्याख्यान का निरूपण गुरु-शिष्य संवाद के माध्यम से होता था। यह शिक्षा निःशुल्क थी। शिक्षा प्राप्त करके शिष्य गुरु को गाय, अन्न या अश्व किसी भी रूप में गुरु दक्षिणा देता था विद्यार्थियों की 25 वर्ष की ब्रह्मचर्य की अवधि को उत्तरोत्तर विकास क्रम से सत्र एवं समय में विभाजित किया जाता था। जिस दिन अध्ययन बन्द रहता था उसे अनध्याय शब्द से संबोधित करते थे। अध्ययन की समाप्ति समापन कहलाती थी। अतः शिक्षा की समाप्ति पर समावर्तन संस्कार होता था।

7. विनयपूर्ण अनुशासन

विनयपूर्ण अनुशासन सम्पूर्ण वैदिक शिक्षा का केन्द्र बिन्दु था। आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हेतु बालक में आत्मनियंत्रण की शक्ति परमावश्यक थी। यह शक्ति बालक को गुरु शिष्य के आत्मीय एवं मधुर सम्बन्धों से प्राप्त होती थी। अतः दोनों का आचरण, व्यवहार आदर्श तथा अनुकरण पर आश्रित था। दानों ही ओर से विनम्रता सिद्ध तथा साक्ष्य थी।

वैदिक शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण अनुशासन आत्मानुशासन था। आत्मा की तुरीयावस्था की प्राप्ति हेतु लालायित शिष्य स्वयं को सर्वदा नियन्त्रित रखता था। इसके लिये ब्रह्माचारियों एवं आचार्यों के लिये निर्धारित नियम तथा संयम तत्कालीन शैक्षिक अनुसन्धान का द्योतक है। ब्रह्मचारी के भिक्षा के लिये जाने पर यह कहने का विधान था कि—

“महोदय भोजन दीजिये।” यह अनुशासन का प्रथम पाठ था। “निरुक्त के ‘विद्या सूक्त’ में उल्लिखित है कि जो शिष्य विद्या को घृणा की दृष्टि से देखे, कुटिल एवं असंयमी हो ऐसे शिष्य को विद्या ज्ञान नहीं देना चाहिए किन्तु जो पवित्र, ध्यानमग्न, बुद्धिमान, ब्रह्मचारी, गुरु के प्रति सत्य हो उसे शिक्षा देनी चाहिए।” अध्ययन काल में विद्यार्थी को सिर के बाल मुड़ाने का भी अनुशासन था। इस सम्बन्ध में कई नियम बताये गये हैं। अभिवादन भी नित्य, नैमित्तिक होता था। इस प्रकार सुदृढ़ आदर्शवाद भित्ति पर निर्मित वैदिक शिक्षा में आदर्शात्मक अनुशासन था।

उद्देश्य शब्द 'उत्' तथा 'दिश्' शब्दों के योग से बना है। जिसका अर्थ है ऊपर की ओर दिशा दिखाना। अतः उद्देश्य का अर्थ हुआ उच्च दिशा की ओर संकेत। मनुष्य के जीवन का ध्येय उसके उद्देश्यों की पूर्ति थी इसी कारण ऋषियों तथा मुनियों ने मनुष्य के उद्देश्य पूर्ति को अपना परमकर्तव्य समझकर वैदिक कालीन धर्म से उसका परिचय कराया जो समस्त उद्देश्यों की पूर्ति का साधन था।

ऋषि मुनि यह जान चुके थे कि जीवन का परम लक्ष्य मोक्षप्राप्ति है जो मृत्यु के रहस्यों को जानकर हो सकती है उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन आत्मा परमात्मा के ऐक्य को समझने में ही लगा दिया। डा. ए.एस. अल्तेकर ने लिखा है – "ईश्वर भक्ति एवं धार्मिकता की भावना, चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति एवं राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण वैदिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्य थे।

वैदिक कालीन शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास करना है। इसके लिये आत्म सम्मान, आत्मविश्वास, आत्मसंयम, न्याय आदि गुणों का विकास करना है। शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित करते हुए प्रो. शिवदत्त ज्ञानी ने लिखा है – "प्राचीन शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य मनुष्य को निसर्ग सिद्ध शक्तियों का सम्यक विकास करके उसे सच्चे अर्थ में मनुष्य बनाना था। जिससे वह जीवन की पहेलियों को सुलझाने में समर्थ हो सके। वैदिक साहित्य में शिक्षा का कोई उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता है। अनुसंगिक ग्रन्थों की सहायता से तत्कालीन शिक्षा उद्देश्यों को बताया गया है।

मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान :

वैदिक कालीन शिक्षा में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान था। मनुष्य के जीवन में धार्मिक वृत्तियों का गरिमामय स्थान है। विद्यार्थियों के जीवन में भक्ति तथा धर्म का विकास शिक्षा द्वारा होता है। वैदिक काल में धर्म का सर्वाधिक आदर था। इसके बारे में कहा गया –

"धारणात् धर्माभिप्राहुः धर्मो धारयते प्रजा।"

अर्थात् जिसको धारण करने से लौकिक अभ्युदय तथा पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति हो। इस काल की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ईश्वरभक्ति तथा धर्म के नियमों का कठोरता से पालन करना था। इस उद्देश्यपूर्ति के लिए विभिन्न संस्कार थे। ब्रह्मचारी द्वारा दैनिक क्रिया, संध्योपासन, व्रतों का अनुपालन उसकी धार्मिक वृत्तियों के उत्थान में योग देते रहे हैं। शौच, पवित्रता, आचार, स्नान आदि तथा सन्ध्योपासना व्यक्ति का धर्म था।

"उपनीय गुरुः शिष्य शिक्षयेच्छौचमादितः

आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च।"

ब्रह्मचारी निष्ठापूर्वक धार्मिक निर्देशों का पालन करता था तथा शंका होने पर उसका निवारण करता था। धर्माधारित नियमों का पालन करते हुए लौकिक तथा पारलौकिक जीवन को समझ पाने में सक्षम था। वह आध्यात्म का ज्ञान भी धर्म द्वारा ही करता था। मनुष्य के जीवन से तप, दान, अहिंसा, सत्य वचन व ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अनिवार्य माना गया क्योंकि ये धार्मिक प्रवृत्तियों के मूल थे।

9. मनुष्य को चारित्रिक शिक्षा देना

वैदिककालीन शिक्षा में विद्वान होने से श्रेयष्कर चरित्रवान होना था। हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों के अनुसार तो मनुष्य के जीवन की सार्थकता चरित्र निर्माण के रहस्य में निहित है। इसमें व्यक्ति सन्मार्ग की ओर

अग्रसर होता था। सच्चरित्रता को व्यक्ति का आभूषण माना गया था। चूंकि विद्यार्थी जीवन को मनुष्य के जीवन का प्रभात कहा जाता था अतः चरित्र निर्माण की दृष्टि से यह सर्वाधिक उपयुक्त काल था। जो धर्मवान तथा चरित्रवान था वही पण्डित था। व्यक्ति को सत् का पूर्ण ज्ञान हो जाने पर वह तदनुकूल आचरण करता था। अपने विद्यार्थी जीवन में व्यक्ति चरित्र निर्माण करते हुए अपने कर्मों का पालन नियमपूर्वक करता था। ब्रह्मचारी का जीवन तप तथा नियम का जीवन था अतः कहा गया है –

“ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजष विभर्ति
तस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।”

समिधा तथा मेखला द्वारा अपने व्रतों का पालन करते हुए ब्रह्मचारी धर्म तथा तप के प्रभाव से लोकों को समुन्नत करता था –

“ब्रह्मचारी समिधा मेखलया,
धर्मेण लोकास्तपसा विभर्ति।”

यह माना गया है कि ब्रह्मचर्यव्रत पालन से ही राजा राष्ट्र का निर्माण करता था। ब्रह्मचर्य द्वारा ही आचार्य शिष्यों को दीक्षित करता था –

“ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति,
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणामिच्छते।”

तप ब्रह्मचर्य का आवश्यक अंग था। शौच, पवित्रता, स्नान, संध्योपासन इसके प्रमुख तत्व थे जिसके द्वारा चरित्र का उत्थान होता है। गुरुकुलों के उत्तम वातावरण, महान विभूतियों के आदर्शों के द्वारा छात्रों के चरित्र का निर्माण किया जाता है। डा. वेदमित्र ने बताया है –

“The building of the character of student was deemed as one of essential objects of Education”

10. मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास :

शिक्षा द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। शिक्षा से व्यक्ति विभिन्न कर्तव्यों का पालन करता है। इससे व्यक्ति के अन्दर आत्मसंयम, आत्मविश्वास, आत्मविश्लेषण, आध्यात्मिकवृत्ति का उदय होता है।

वैदिक काल में माना गया है कि आत्मविश्वास होने पर ही व्यक्ति का सर्वांगीण विकास हो सकता है। इसी कारण वह गुरु के सान्निध्य में रहता था तथा गुरु उसमें आत्मविश्वास का विकास करता था।

शिक्षा प्रारम्भ से पूर्व ही बालक का आत्मविश्वास जागृत करने के लिए अग्नि से प्रार्थना की जाती थी वह छात्र पर अपनी दयादृष्टि रखें तथा उसकी वृद्धि, मेधा व शक्तिवृद्धि करें। अग्नि तेज का देवता था। अग्नि शिखाओं की भांति बालक को कीर्ति दे तथा यश सभी दिशाओं में फैले। अनेक देवताओं के पूजन से यह माना जाता था कि सभी देवतागण उसकी रक्षा करेंगे।

सवितृ बालक की मृत्यु से, रोगों से रक्षा करता था – “देव सवितरेव ते ब्रह्मचारी सा मा मृत।।” ब्रह्मचारी को आत्मसंयम की शिक्षा दी जाती थी जिसका अभिप्रायस आत्मनियंत्रण से था। उसे अपने इन्द्रियों को नियंत्रित करने की शिक्षा दी जाती थी जिससे बालक के व्यक्तित्व का विकास निर्बाध गति से होता था।

11. नागरिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्पादन

वैदिककालीन शिक्षा का उद्देश्य बालकों को नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का पालन करने योग्य बनाना भी था। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा उसे समाज में रहकर जीवन व्यतीत करना होता है

बालकों को बोध कराया जाता था जिससे कि वह समाज के प्रति कर्तव्य समझकर उसका निर्वाह उचित रूप से कर सके। व्यक्ति को समाज, घर, परिवार के प्रति कर्तव्यों का ज्ञान कराया जाता था। गुरुकुल से शिक्षा समाप्त कर जब बालक वापस लौटता था तब गुरु सबके प्रति उसके कर्तव्यों का बोध कराकर उसे पालन करने की शिक्षा देता था तथा उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता था।

विद्यार्थी के समावर्तन उपदेश में कहा गया था। सत्य बोलना। धर्म का आचरण करना। स्वाध्याय में प्रमाद न करना। आचार्य को दक्षिणा दे देने पर सन्तति उत्पादन की परम्परा विच्छिन्न न करना। सत्य से न हटना। धर्म से न हटना। लाभ कार्य में प्रमाद न करना। देवताओं व पितरों के कार्य (यज्ञादि) में प्रमान न करना। माता को देवी समझना। पिता को देवता समझना। दोषरहित कार्यो को करना। सभी जातियों के अलग-अलग व्यवसाय थे। सभी वर्ण जाति के कर्म विभाजित थे। व्यक्ति अपने व्यवसाय को छोड़कर दूसरे व्यवसाय भी अपना लेता था।

12. नीति सम्बन्धी जीवन

नीति शब्द से तद्धित का ढक् लगाकर नैतिक शब्द बना है जिसका अर्थ है – नीति सम्बन्धी। नैतिक शब्द अपने अर्थ में उन विषयों को समेट लेता है। जिसका तात्पर्य नीति से है।

भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही नीति की शिक्षा को महत्व दिया गया है। वैदिक काल में विद्यार्थी गुरुकुलों में रहते थे तथा समस्त अवगुणों से रहित हो गुरु के समीप बैठकर सदाचार की शिक्षा प्राप्त करते थे। सत्य, अहिंसा, तप आदि गुणों का विकास गुरु करते थे। उन्हें धर्मनीति सिखायी जाती थी। धर्म का परिवर्द्धन तथा संरक्षण करने की शिक्षा दी जाती थी इसके लिए चरित्र निर्माण भी आवश्यक था। उन्हें चित्तवृत्तियों का निरोध करना पड़ता था। जिसके विषय में डा. आर. के. मुखर्जी ने लिखा है –

“The aim of Education was chittavritti nirodh; inhabitation of those activities of the mind by which it gets connected with the world of matter or object”

इस प्रकार मनुष्य का नैतिक विकास शिक्षक का परम कर्तव्य होता था। ऋग्वेद में वरुण को नीति का देवता माना गया जो अत्यन्त कठोर है।

13. आध्यात्मिक जीवन से परिचय

ईश्वर आध्यात्म से तात्पर्य ईश्वर को जानने से है। आध्यात्मिक शिक्षा में प्राचीनता तथा गूढता है। आध्यात्म के द्वारा व्यक्ति जीवन के समस्त रहस्यों को समझ जाता है तथा वह पारलौकिक जगत में विश्वास करता है लौकिक जगत उसके लिये मिथ्या हो जाता है। आध्यात्म द्वारा वह अनेक जिज्ञासाओं को शान्त करता है। आध्यात्म ज्ञान से ब्रह्म ज्ञान होता है। वेदान्त ने बताया है – ‘सत्यमज्ञानमन्तम् ब्रह्म’। वेदान्त ने यह भी बताया है ‘विज्ञानमानन्दब्रह्म’।

वैदिक काल में ज्ञान के लिए प्राप्त किया जाता था। सबको चिन्तन तथा मनन के लिये गुरुकुलों में प्रोत्साहन मिलता था। उस समय वेदों का श्रवण, मनन तथा निदि ध्यासन किया जाता था अतः इन्हीं तीनों विधियों द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था। अथर्ववेद में बताया गया है कि इसमें आध्यात्मवाद तथा सहानुभूतिपूर्ण जादू का वातावरण है। जिसका सांस्कृतिक स्तर ऋग्वेद से निम्न कोटि का है तथा जो आर्यों के अप्रतिष्ठित धर्म से उद्भूत है तथा जिसमें अनेक अनार्य तत्वों का समावेश है।

वैदिक काल में आध्यात्म से अनुप्राणित शिक्षा थी। जिसे अपरा विद्या करते थे। इसे जानकर व्यक्ति के मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो जाता था जो कि उसके जीवन का अन्तिम तथा परम लक्ष्य था। ब्रह्म आत्मा में ऐक्य की अनुभूति की अवस्था को मोक्ष कहा गया है। मोक्ष के लिए ज्ञान मार्ग का प्रतिपादन हुआ। यह ज्ञान मार्ग ब्रह्मन् तथा आत्मन् की बीच अद्वैत भाव का अनुभव करना था।

संदर्भ

1. अल्तेकर ए. एस. एजूकेशन इन एन्शियेण्ट इण्डिया
2. मनुस्मृति 2/69
3. अथर्ववेद 11/5/24
4. अथर्ववेद 11/5/4
5. अथर्ववेद 11/5/17
6. आश्वालन गृहसूत्र 1/20/6
7. मुखर्जी आर. के. एजूकेशन इन एन्शियेण्ट इण्डिया. पृ. 55-56
8. बाशम ए. एल. अद्भूत भारत पृ. 193
9. द्विजेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली कृष्ण मोहन. प्राचीन भारत का इतिहास पृ. 137